# गुरू शिष्य परम्परा घराना एवं वर्तमान समय में उसकी आवश्यकता''

गुरू शिष्य प्रणाली से विद्या का आध्ययन हमारी आदि परम्परा रहीं है। गुरू मुख से सुन समझ कर ही किसी भी विद्या का सही ज्ञान सम्भव है। यह तथ्य जितना स्पष्ट तब था, उतना ही अब भी है विषय चाहे कला का हो या विज्ञान, उसके सभी आयामों को जानने केलिए गुरू की अति आवश्यकता होती है। संगीत की शिक्षा के दृश्टिकोण से गुरू का महत्व और भी अधिक हो जाता है विभिन्न विधाएँ जो गुरू–कृपा से प्राप्त होती है उसका वास्तविक ज्ञान कराने के लिए गुरू जो ढंग अपनाते है, वह उनका अपना विशेष होता है। सांगीतिक भाशा में जिसे हम 'घराना' कहते है और यही घरानेदार गायकी हिन्दुतानी संगीत की अपनी निजी और प्रमुख विशेषता है। राग वही है, लेकिन राग में लगने वाले स्वरों का प्रयोग, बढत विस्तार गमक प्रयोग तान–आलाप सरगम, मुखड़ा सम पर आमद आदि की भिन्नता ने गायन–वादन व नृत्य को अलग–अलग रंग प्रदान किया है जो घराना विशेष के नाम से प्रचलित हुआ, जिसका सही ज्ञान गुरू के मार्गदर्शन में ही प्राप्त को सकता है। संगीत का साधन मानवीय आवाज है जो मानव रूप की भॉति भिन्न–भिन्न है। यही आवाज योग्य गुरू द्वारा जब संस्कारित की जाती है और शिष्य भी जब निरन्तर अभ्यास से गुरू के मार्ग–निर्देशन में गॅूज लालित्य और स्निगग्धता लाकर आवाज पर भिन्न–भिन्न अलंकारों के माध्यम से आवाज को स्वर का रूप देता है तब घरानों का आविर्भाव शुरू होताहै।

अतः कह सकते है कि घराने ऐसे सम्प्रदाय का वर्ग है जिनके संस्थापकों ने अपनी मेहनत व लगन से संगीत साधना करके अपने कला–कौशल के बल पर प्रसिद्धि प्राप्त की तथा शास्त्रों पर आधारित संगीत में क्रियात्मक रूप से कुछ नवीन प्रयोग करके उसे अपनीमनोवृति के अनुसार मधुर व आकर्षक बनाया और शिष्यों को सिखया जो अनेक पीढियों की परम्परा से विशिष्ट घरानों के रूप में जाने लगी। यही परम्परा ने घरानेदार गायकी को आगे बढाया, जिसमें रियाज यानि अभ्यास का कड़ा अनुशासन एवं सुर लगाने की एक मर्यादा रहती थी। शिष्य भी नम्र भाव से संगीत की कठोर साधना करते थे। गुरूजन भी शिष्यों की ग्रहण भाक्ति के अनुसार उनसे अभ्यास करवाते थे। आवाज बनाने लिए जो 'संस्कार' या 'सुर' पर रियाज करने का तरीका यहॉ बताया जाता था, वह वस्तुतः अपने में बडा स्वभाविक और वैज्ञानिक था, क्योकि घरानेदार गायकी के लिए सस्कारित आवाज ही स्वीकार्य थी। निरन्तर के अभ्यास से स्वरों की सूक्ष्मता और सौष्ठव का अनुभव अनायास ही हो जाता था और आवाज में घनता तथा वजन का निर्माण होता था और यह तभी सम्भव था, जब शिष्य एक ही गुरू के रंग में पूर्णत सराबोर होता था, तब शास्त्रीय जमीन की तैयारी उनके गले में अनायास हो जाती थी। यह बात सही भी है, क्योकि जब तक एक ही घराने में रहकर शिष्य के गले और कान पूर्णत कुशल नही हो जाते, तब तक अभिजात–संगीत की महीन और सूक्ष्म अदाकारी को शिष्य आत्मसात नहीं कर सकता। सात–आठ वर्षो तक ही गुरू की छत्रछायामें रहकर शिष्य अपने कान और गले की मर्यादा उनका गुण धर्म समझने योग्य हो जाता था। उसके बाद ही फिर अन्य गायकों या घरानों की हरकतें स्वर लालित्य और अच्छे–अच्छे तरीके अपने ढंग से गायकी में उतार लेता था, तभी गायकी में नित नवीनता बढती जाती थी। हमारे सगीत में ऐसे अनेक नामी गायक हुए है, जिन्होंने तालीम किसी एक गुरू से ग्रहण की तथा अपनी गायकी का श्रृंगार किन्ही अन्य घरानों की खूबियों से की, तभी उनकी गायकी अभी भी नित ताजगी लिए हुए दिखाई देती हैं।

जैसे मुश्ताक हुसैन खॉ साहब दक्षिण के ख्यातनाम ख्याल–गायक बाल कृश्णवुवा, श्रीमती केसरवाई केरकर, मंजीर खॉ साहब आदि इसके उदाहरण है। और यह सच भी है संगीत में केवल वे ही घराने और उनके गायक जीवंत हुए, जिन्होंने संगीत की तालीम के बाद अपनी गायकी में खुशबू और विविध रंग भरनेके लिए अन्य गुरूजनों और घरानों का भी प्रसाद बराबर ग्रहण किया, तभी उनकी गायकी बहती हुई सलिला की भॉति स्वच्छ और पारदर्शी बन पायी। गुरूओं के मार्गदर्शन और निरीक्षण–परीक्षण से गायकी खिले फूल की तरह महकती चहकती रही । अतः गुरू शिष्य परम्परा ही घरानों का आधार है और सत्य भी है कि जिन संगीत साधकों ने अपना सम्पूर्ण जीवन इस कला की साधना में लगा दिया, इसकी रक्षा करना उनका प्रथम कर्तव्य था । इसी कारण 'घरानेदार' गायकी का दूसरा नाम 'अभिजात–संगीत' पड़ा, जिसने हमारे संगीत को अन्य संगीत से अधिक प्रतिष्ठित समृद्ध और चैतन्यशील बना दिया। यही कारण है कि 'अभिजात संगीत' वर्षो पुराना होकर भी आज प्रभावी और असरदार है। 'घरानेदार' संगीत ने न केवल संगीत को समृद्ध किया, बल्कि उसकी परम्परागत विद्या को बचाने में अमूल्य सहयोग दिया। श्री देश पांडे जी के शब्दों, ''घरानेदार गायकी और अभिजात संगीत पर्यायवाची शब्द है, जो भी अभिजात याचि उच्च माना गया है जिसके कारण हिन्दुस्तानी संगीत उन्नति कर सका, विकसित हुआ, समृद्ध बन सका, वह सब इन घरानों की छत्रछाया में रहकर और आज भी हैं। अतः यह तो सच ही है कि संगीत को परम्परागत विद्या को बचाने में निश्चय ही घरानों ने अमूल्य सहयोग दिया किन्तु धीरे–धीरे उससे बहुत सारी कठिनाईयॉ अनुभव की जाने लगी, जिन्हे हम निम्न

बिन्दुओं में देख सकते है।

1. संगीत शिक्षा जन सामान्य की पहुँच से दूर हो गयी।
2. घरानेदार गुरू हर किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे।
3. यह संगीत शिक्षा पूर्णतः गुरू की इच्छा पर निर्भर थी एवं उनके मनोगत भावनों का सम्पूर्ण प्रभाव शिष्य पर पड़ता था।
4. यह तालीम सामने बैठकर ही दी जाती थी जितना ज्ञान गुरू देना चाहता था, उतना ही शिष्य पाता था, उससे अधिक नहीं।
5. घरानों की एक मर्यादा थी और रीति–रिवाज करने करवाने का तरीका था।

इस कठिन अनुशासन के होते हुए बहुत सी संगीत के 'घरानेदार' चीजें के साथ ही समाप्त हो रही थी, जो संगीत के विरासत की दृष्टि से शुभ संकेत नही था। संगीत सबके लिए सुलभ हो सकें, उसका क्षेत्र व्यापक बन सकें इस दिशा में पं0 विष्णु नारायण भातखंडे तथा पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का योगदान भुलाया नही जा सकता है। इन्होंने शास्त्रीय संगीत के विकास को पंख प्रदान किये। एक नया युग स्थापित किया तथा अनेक संगीत महाविद्यालयों की स्थापना कर संगीत का घरानेदार परम्परा से जोड़ने का अथक प्रयास किया। किन्तु विद्यालयों की शिक्षण प्रणाली में एक साथ अनेक विद्यार्थियों को संगीत की शिक्षा में संगीत के सुरों की शिक्षा थोड़ी बहुत तो दी जा सकती है, किन्तु गायकी की बारीकियॉ नही सिखाई जा सकती। जैसे दरबारी कान्हडा का धनिरे का लगाव तथा जयजयवंती का धनिरे का लगाव। राग पूरिया भारवा के स्वर एक जैसे है कितुं उनको लगाने का तरीका 40–50 मिनट की कक्षा में सिखाना सम्भव नही हो सकता। आडाचारताल तथा घमार दोनों मे समान मात्रा है कितु बजाने का तरीका अलग है। जो कि केवल प्रैक्टीकल रूप में ही कई दिनों के अभ्यास से बताया जाना सम्भव रहता है। संगीत को ऊपरी तौर पर तो समझ जा सकता था। किंतु संगीत की बारीकियां गुरू शिष्य परम्परा से ही उपलब्ध हो सकती है और किसी उपाय से नहीं। विद्यालयीन एवं महाविद्यालयीन शिक्षा में विद्यार्थी को गाना तो आ जाता है किन्तु श्रुति ज्ञान नही हो पाता, जोकि एक चिन्ता का विषय है। इसलिए इस कला की जानकारी के लिए जब तक अलग से किसी योग्य गुरू से लगातार कई वर्षो तक सामने बैठकर इसके 'गुर– न सीखे जाएँ, आवाज की तैयारी न की जाए, तब तक घरानेदार गायकी के कायदे रीतियां और विभिन्न स्वर संगतियों को शिष्य के गलें में नही उतारा जा सकता। यह ता गुरूमुखी विद्या है । कदम कदम पर गुरू के मार्ग दर्शन की सख्त जरूरत रहती है। उपरोक्त अध्ययन से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते है कि पुरानी गुरू शिष्य प्रणाली के उत्तम संगीत का स्तर ऊँचा उठाना है तो ऐसी संगीत संस्थाओं की स्थापना होनी चाहियें, जिन्हें सरकारी आर्थिक सहयोग प्राप्त हो, कलाकारो को वहॉ आर्थिक चिन्ता न करनी पड़े और उसे सरकार का आश्रय प्राप्त हो। साथ ही शिष्यों के लिये छात्रवृत्ति की उचित व्यवराथा हो। ऐसी संस्थाओं में प्रतिभावान छात्र श्रेष्ठ गुरूओं से संगीत की परम्परागत तालीम लेकर उच्च कोटि के कलाकार बन सकेगें। एक अन्य दृष्टिकोण मेरा यह भी है कि वर्तमान में अनेक विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में संगीत विषय के रूप में भामिल है यदि इन शिक्षण संस्थाओं में घरानेदार शिक्षा का समावेश कर लिया जाये तो संगीत कला और अधिक उन्नति के शिखर पर आसीन हो सकती है।

संदर्भ सूची :–

संगीतमणि – डा0महारानी शर्मा
संगीत पत्रिका – डा0महारानी शर्मा
संगीतायन – डा. सीमा चौधरी

**डा0जया शर्मा**
एसो0प्रा0फेसर (संगीत विभाग)
आर्य कन्या पी0जी0कालिज,
हापुड़